**Research Chronicler: International Multidisciplinary Refereed Peer Reviewed Indexed Research Journal**
**ISSN: Print: 2347-5021 www.research-chronicler.com ISSN: Online: 2347-503X**

# केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में काव्य चेतना

**पिंकी कुमारी**

*ग्राम–पो. – तुर्की खरारू (डाकबंगला), थाना – मीनापुर, मुजफ्फरपुर, (बिहार) भारत*

## सारांश

केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और नागार्जुन के साथ प्रगतिशील कवियों की त्रयी में आते हैं। जब भी हम प्रगतिशील कविता की चर्चा करेंगे, उनका उल्लेख अपरिहार्य होगा। केदारनाथ अग्रवाल बुंदेलखंड की धरती से जुड़े ऐसे कवि हैं, जिनकी रचनाओं में मिट्टी की महक और उस मिट्टी के निवासियों का जीवन अपनी समूची विशेषताओं के साथ उपलब्ध है। उनके पास भाव–प्रवण संवेदनात्मक हृदय के साथ ही एक जागृत और विवेकशील मस्तिष्क भी है, जो उन्हें निरंतर सचेत और चौकस रखता है। उनकी कविताओं में जीवनयापन का रस, कोमलता और सहजता के साथ ही एक तरह की कठोरता और प्रचंडता भी है जो उनकी विशिष्टता को अलग से रेखांकित करती है।

**विशिष्ट शब्द** : प्रगतिशील, यथार्थ, अग्निवर्षा, सांस्कृतिक, ऊर्जा, सर्वहारा, जनवादी, पूंजीवाद, श्रमिक, ठेठ, सौंदर्य चित्रण, चेतना

वर्ष 1936 में संगठित रूप से शुरू हुए प्रगतिशील आंदोलन का साहित्य पर सबसे बड़ा असर यह पड़ा कि आदर्शवाद के कोहरे से यथार्थ बाहर निकल आया। केदारनाथ अग्रवाल 1931 से पहले लिख रहे थे, लेकिन जब वे प्रगतिशील आंदोलन के संपर्क में आएं तो मार्क्सवादी हो गए। इनके पहले काव्य संग्रह 'युग की गंगा' में यथार्थ की अग्निवर्षा है। कहा जा सकता है, प्रगतिशील आंदोलन ने एक समय हिंदी लेखकों को रोमांटिक भावोच्छ्वास, आदर्शवाद और अंतर्मुखता से किस तरह बाहर निकाला था, इसके उदाहरण कवि केदारनाथ अग्रवाल हैं। प्रमुखता मिलनी शुरू हुई। इनकी कविता का आयाम बहुत बड़ा है। सन् 1930 से 1997 तक की साहित्य–यात्रा में केदारनाथ अगवाल की दो दर्जन काव्य–ग्रंथ प्रकाशित हैं। जिसमें इनकी काव्य चेतना के कई आयाम देखने को मिलते हैं। इनके काव्य में सौंदर्य चित्रण, प्रणय चित्रण, सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक चेतना, व्यंग्य का स्वर, क्रांति एवं विद्रोह दृष्टिगत होते हैं। इनकी रचनाओं में प्रकृति की सजीव एवं सुरम्य झांकियाँ भी दिखती है। इनकी रागात्मक संवेदना का दूसरा पहलू प्रणय–भावना का है। कवि जन–जन के चितेरे और समाज के पहरुआ भी दिखते हैं। इन्होंने अपने काव्य में शोषितों, पीड़ितों, किसानों, मजदूरों व सर्वहारा वर्ग के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त की है तो दूसरी ओर षोशके प्रति घृणा का भाव है। इनकी काव्य चेतना का

विकास जनवाद और सामाजिक विकास में निहित है। यही कारण है कि इनकी रचनाएँ समाज सापेक्ष बनी है। जनकवि के रूप में इन्होंने अदम्य ऊर्जा के साथ साहित्य सृजन किया है। क्रांति का ओजस्वी स्वर केदारनाथ की कविताओं में विद्यमान है। विश्व के सर्वहारा वर्ग को समृद्ध कर एकता स्थापित करना कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण रहा है।

आजादी से पहले केदारनाथ अग्रवाल ने स्मृति से प्रत्यक्ष पर आकर प्रगतिशील तेवर की जो कविताएं लिखी, वे 'युग की गंगा' में संकलित हैं। उनसे पहले 'निराला' और 'पंत' छायावाद का अतिक्रमण कर अपने–अपने तरीके से पूंजीपति–सामंत गठजोड़ पर प्रहार कर चुके थे। 'तार सप्तक' के कवियों ने श्रमजीवी जनता का जागरण दिखाया था, पूंजीवाद के ध्वंस की कामना की थी। पूंजीवादी दुनिया पहले विश्वयुद्ध के बाद से ही जिस कदर नृशंस होती जा रही थी, स्वाधीनता आंदोलन के उस खास दौर में जन मनोभूमि के कवियों की आजादी का राजनितिक या वैयक्तिक अर्थ पर्याप्त नहीं लग सकता था। इसका यह मतलब नहीं है कि आजादी के ये संघर्ष निरर्थक थे। मामला सिर्फ यह था कि आजादी को देखने के एक साथ कई कोण बन रहे थे। एक गरीब किसान के लिए आजादी का वही अर्थ नहीं हो सकता था जो शहरी बुद्धिजीवी के लिए था। प्रगतिशील आंदोलन ने आजादी, राष्ट्रीयता आदि के दबे हुए अर्थों को उद्‌घाटित किया था, उसे इसी रूप में देखना चाहिए। दरअसल उस युग की बुनियादी बौद्धिक टकराहट कुछ और नहीं, आजादी की बन रही धारणाओं को लेकर थी। ऐसे समय में केदारनाथ की काव्य संवेदना ऐसे प्रकट होती है –

"जब बाप मारा तब क्या पाया,
भूखे किसान के बेटे ने
घर का मलबा, टूटी खटिया,
कुछ हाथ भूमि
वह भी परती
चमरौधे जुटे का तल्ला
छोटी, छोटी बुढ़िया औगी
वह क्या जाने आजादी क्या ?
आजाद देश की बातें क्या ?"[1]

केदारनाथ अग्रवाल ने 1960 में लिखा था, "मैं नई कविता का विरोधी नहीं, उसके उन सब तत्वों का विरोधी हूँ जो उसे कविता नहीं, 'मस्तिष्क की विकृति' और 'युग विशेष की एकांगी आकृति' बना देते हैं। नई उपमाओं, नए स्पर्शों के धरातल, नए आकार, नई ग्रहणशीलता आदि सबका स्वागत है।"[2] केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और नागार्जुन के साथ प्रगतिशील कवियों की त्रयी में आते हैं। जब भी हम प्रगतिशील कविता की चर्चा करेंगे, उनका उल्लेख अपरिहार्य होगा। केदारनाथ अग्रवाल बुंदेलखंड की धरती से जुड़े ऐसे कवि हैं, जिनकी रचनाओं में मिट्टी की महक और उस मिट्टी के निवासियों का जीवन अपनी समूची विशेषताओं के साथ उपलब्ध है। उनके पास भाव–प्रवण संवेदनात्मक हृदय के साथ ही एक जागृत और विवेकशील मस्तिष्क भी है, जो उन्हें निरंतर सचेत और चौकस रखता है। उनकी कविताओं में जीवनयापन का रस, कोमलता

और सहजता के साथ ही एक तरह की कठोरता और प्रचंडता भी है जो उनकी विशिष्टता को अलग से रेखांकित करती है, उन्हें जनता से अपार प्रेम है, किन्तु वे उसकी कमजोरियों के लिए उसे कभी माफ नहीं करते। केदार जनता से उत्कट प्रेम रखते हुए भी उसकी कमजोरियों, संस्कार बद्धता और उसकी प्रतिगामी रुझानों के सजग आलोचक भी हैं।

केदारनाथ अग्रवाल वस्तुतः 'यह धरती है उस किसान की', 'काटो काटो काटो करबी', 'चंद्रगहना से लौटती बेर' आदि कविताओं में अपनी काव्यात्मक आस्था पा चुके थे। 'चंद्रगहना से लौटती बेर' में कवि एक पोखर के किनारे खेत की मेड़ पर बैठा प्रकृति के अचंभों को देख रहा है। यह कविता विविधतामय प्रकृति का एक गतिशील सौंदर्य–चित्र भर रही है। इसमें गुलाबी रंग के फूलों से सजे मुरैठा की तरह दीखता चने का पौधा साधारण की गरिमा का उद्घोष बन जाता है। कवि खेत में भले ही अकेले बैठा हो, पर हिलमिल कर उगे अलसी के पौधों की एकता का बिम्ब है। केदार जी को बिम्ब से परहेज नहीं है। वह लोक–जीवन की संवेदना से भरा हृदय लेकर बड़े जीवन–स्पर्शी बिम्ब रचते हैं। प्रकृति की एक–एक चीज के साथ कवि का मन दौड़ता है और उसे सुंदर बना देता है–

"एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बांधें मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है
पास ही मिलकर उगी है
बीच में अलसी हठीली
इस विजन में
दूर व्यापारिक नगर से
प्रेम की प्रिय भूमि उपजाऊ अधिक है।"[3]

केदारनाथ अग्रवाल जीवंत प्रकृति–चित्रण के लिए अधिक ख्यात रहे हैं। जनवादी कवि होने के कारण उन्होंने ग्रामीण प्रकृति के चित्र अपनी कविता में अधिक उतारे हैं जो खेत–खलिहानों से सम्बंधित हैं। पेड़–पौधे, नदियां, पहाड़, फसल सबकुछ उनकी कविताओं में उपलब्ध हो जाता है। 'खेत का दृश्य' नामक कविता में उन्होंने धरती को राधा के रूप में तथा कृषक को कृष्ण के रूप में देखा है। आसमान ही इसका दुपट्टा है और धानी फसल ही इसकी घंघरिया है–

" आसमान की ओढ़नी ओढ़े।
धानी पहने फसल घंघरिया।।
राधा बनकर धरती नाची।
नाचा हंसमुख कृषक संवरिया।।"[4]

केदारनाथ अग्रवाल ने एक तरफ प्रकृति के गुमसुम रूप का चित्रण किया है, दूसरी तरफ 'बसंती हवा' में जैसे वह हवा न हो, एक उछलती–कूदती गंवई लड़की हो। केदारनाथ अग्रवाल ने यह कविता अपने मन के सम्पूर्ण उल्लास के साथ लिखी है–

"हवा हूँ हवा मैं बसंती हवा हूँ
बड़ी मस्तमौला नहीं कुछ फिकर है
बड़ी ही निडर हूँ, जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ मुसाफिर अजब हूँ।।
चढ़ी पेड़ महुआ थपाथप मचाया

गिरी धम्म से फिर चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा किया कान में कू
उतरकर अभी मैं हरे खेत पहुंची
वहां गेहुंओं में लहर खूब मारी।।"[5]

इस कविता में प्रकृति की विविधता और काव्यात्मक तन्मयता दोनों चीजे मौजूद हैं। बसंती हवा का मन खेत में अधिक रमा है। केदारनाथ जी कविताओं में, वे उदासी की हों या उल्लास की, संगीत की ताकत बहुत काम करती है। उन्होंने काव्यरूप की जमीन ही नहीं संगीत के मामले में भी लोक और आधुनिक दोनों को पकड़ा। उनके संगीत में गहराई मिलती है। रामविलास शर्मा जी ने लिखा है, "कविता के अलावा केदार को संगीत से भी प्रेम है। जब दिल्ली में थे तो मैंने टेप की हुई सुलोचना बृहस्पति की मालकोस की बंदिश उन्हें सुनाई। वह उन्हें पसंद आई, उन्होंने कहा इसे फिर बजाओ। जितने दिन वह यहाँ रहे, प्रतिदिन एक बार वह बंदिश सुनते रहे।"[6] उनकी जिन कविताओं में संगीत है, उनका अर्थ सुनिश्चित सीमारेखाओं से मुक्त हो जाता है।

मांझी न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता जैसा जल डोलता
जल का जहाज जैसे पल–पल डोलता
मांझी न बजाओ बंशी मेरा प्रन टूटता
मेरा प्रन टूटता जैसे तृन टूटता
तृन का निवास जैसे बन–बन टूटता।"[7]

केदारनाथ अग्रवाल सामान्य जान के समस्त राग–विरागों के कवि हैं। हिंदी में इस श्रम–सौंदर्य के सबसे बड़े गायक को देश, समाज, काल, और राजनीति के साथ जीवन के भिन्न–भिन्न रूपों के वर्णन में महारत हासिल है। प्रेम, प्रकृति, नदी, पहाड़, जंगल, झरने, खेत, खलिहान कुछ भी उससे अछूता नहीं है। खड़ी बोली में लोक–बिम्ब और प्रतीकों की साधना तो केदार जी कविता में जगह–जगह दिखाई देती है।

"धुप चमकती है चांदी की साड़ी पहने
मैके मे आई बेटी की तरह मगन है
फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है
जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं
भैया की बाहों से छूटी भौजाई–सी
लहगें की लहराती लचती हवा चलीं है
सारंगी बजती है खेतों की गोदी मे
दल के दल पक्षी उड़ते हैं मीठे स्वर के।
अनावरण यह प्राकृत छवि की अमर भारती।"[8]

इसमें संदेह नहीं है कि पूँजीवाद समाज के लिये एक बड़ी आफत के रूप मे मौजूद था, इसके बावजूद लोग अपने दुखों के बीच भी हँसते थे, जीते थे, प्रेम करते थे, और प्रकृति के साहचर्य का भी आनन्द लेते थे। केदार जी की कविता में प्रकृति का जो अद्भुत सौन्दर्य है, उसे क्रांति का उद्दीपक भर मनना या किसी अन्य तरह से उस सौन्दर्य की महत्ता को संकुचित करना ठीक नहीं है। उनकी दृष्टि में प्रकृति के सौन्दर्य की उपेक्षा जीवन का हनन है। यह समझने की जरूरत है कि जिस तरह उन्होने स्थानीय चेहरे को महत्ता दी, उसी तरह प्रकृति के सन्दर्भ मे एक व्यापक पर्यावरणवादी दृष्टि की जरूरत महसूस करके उन्होने प्रगतिशील चेतना की एक और बन्द खिड़की खोली दी–

"चिड़ीमार ने चिड़िया मारी

नन्ही–मुन्नी तड़प गयी
प्यारी बेचारी
0 0 0 0
अब भी है वह चिड़िया जिंदा
मेरे भीतर
नीड़ बनाये मेरे दिल मे
सुबुक–सुबुक कर चूँ–चूँ करती
चिड़िया से डरी–डरी–सी।"[9]

## निष्कर्ष :

केदारनाथ अग्रवाल की कविता मे प्रकृति और लोक परिवेश की सामाजिक–सांस्कृतिक भूमिका को अलग नहीं देखा जा सकता। कालिदास, तुलसी, निराला, नागार्जुन की परंपरा में केदार जी भी लोकजन के कल्याण से जुड़े हैं। केदार जी मुख्यतः मानववादी कवि हैं। लोक जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो उनकी दृष्टि से छूटा हो। उन्होंने सदैव जनता के बीच रहकर उनके कल्याण के लिए संघर्ष किया। केदारनाथ अग्रवाल जितने सहज हैं उतने ही कठिन कवि भी हैं। सहजता उन्हें लग सकती है जो भारतीय ग्रामीण जीवन, कृषि संस्कृति और सचमुच के भारत से वास्ता रखते हैं। गाँव और गाँव के जीवन से जिनका सम्बन्ध पुस्तकों और रजतपटों तक सीमित है, उनके लिये वे कठिन कवि तथा अक्रामक। क्योकि वे किसानों के प्रतिनिधि हैं और ठेठ ग्रामीण जीवन से लेकर श्रमिक की समग्रता ही उनकी मुख्य काव्य वस्तु है। इसका मतलब यह नहीं है कि इस कवि से जीवन का कोइ कोना छूट गया हो। सच तो यह है कि इस कवि ने भारतीय जीवन के उन सभी पक्षों को अभिव्यक्ति दी है जो हम सब के साथ जुड़ा है –

## संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. लेखक – शम्भुनाथ, लेख– क्रांति में खिड़कियां, आलोचना त्रैमासिक पत्रिका, सं. अरुण कमल, सहस्त्राब्दी अंक, बयालीस, जुलाई–सितम्बर 2011, पृ.–24
2. अशोक बाजपेई को पत्र, साक्षात्कार, अगस्त–नवम्बर 1976
3. फूल नहीं रंग बोलते हैं, सं. अशोक त्रिपाठी, प्रथम संस्करण 2009, साहित्य भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 17–18
4. वही, पृ.–31
5. फूल नहीं रंग बोलते हैं, सं० अशोक त्रिपाठी, प्रथम संस्करण 2009, साहित्य भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–20, 21
6. स्मरण में है जीवन : केदारनाथ अग्रवाल, सं. आलोक सिंह, लेखक–डॉ. रामविलास शर्मा, लेख–मेरा मित्र केदारनाथ अग्रवाल, गोदारण प्रकाशन, अलीगढ़, पृ.–39
7. फूल नहीं रंग बोलते हैं, सं. अशोक त्रिपाठी, प्रथम संस्करण 2009, साहित्य भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–25
8. वही, पृ.–63
9. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण 1986, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 297–298